भारतेन्दु नाट्य अकादमी
भातखण्डे संस्कृति विश्वविद्यालय, लखनऊ का घटक
भारतेन्दु भवन, विकास खण्ड–1, गोमती नगर, लखनऊ–226016
दूरभाषः 0522–2300598, 2301015 **ई0मेल :** bna.lko@gmail.com वेबसाइट : bnalko.in

आवेदन पत्र भरे जाने से पूर्व प्रार्थी को निम्नलिखित बातों को ध्यान से पढ़कर समझ लेना आवश्यक है :–

1. प्रवेश हेतु साक्षात्कार में सम्मिलित होने के लिये अभ्यर्थी का कम से कम मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण होना आवश्यक है।
2. आवेदन पत्र अभ्यर्थी द्वारा स्वयं स्पष्ट भरा जाना चाहिये।
3. आवेदन पत्र के साथ निम्नलिखित प्रमाणपत्रों की प्रमाणित प्रतियाँ अवश्य संलग्न करें अन्यथा आवेदन पत्र अस्वीकृत कर दिया जायेगा।

   क. हाईस्कूल प्रमाणपत्र तथा अन्य शैक्षिक योग्यता सम्बन्धी प्रमाणपत्र।

   ख. अन्तिम संस्था, जहाँ से शिक्षा प्राप्त की हो, द्वारा प्रदत्त चरित्र प्रमाणपत्र/माइग्रेशन प्रमाण–पत्र।

   ग. रंगमंच में कार्य करने का अनुभव सम्बन्धी प्रमाणपत्र।
4. अभ्यर्थी को अकादमी द्वारा बलाए जाने पर लिखित परीक्षा/साक्षात्कार/कार्यशाला हेतु उपस्थित होना अनिवार्य है। उत्तर पुस्तिका अकादमी द्वारा उपलब्ध कराई जायेगी। पेन, पेंसिल, रबड़ आदि अभ्यर्थी साथ लाएँ।
5. साक्षात्कार/कार्यशाला के समय अभ्यर्थी के सामान्य व्यवहार व बोलचाल आदि पर भी विशेष ध्यान दिया जायेगा।
6. पूर्ण आवेदन पत्र ''**निदेशक, भारतेन्दु नाट्य अकादमी, भारतेन्दु भवन, विकास खण्ड–1, गोमती नगर, लखनऊ–226010 (उ0प्र0)**'' को अन्तिम तिथि 10 मई, 2025 से पूर्व पंजीकृत डाक द्वारा अथवा वेबसाइट पर ऑनलाइन के माध्यम से भी जमा किया जा सकता है।
7. आवेदन पत्र, फोटो तथा प्रमाण–पत्र की प्रतियाँ किसी भी दशा में वापस नहीं की जायेंगी।

Reading Material

शास्त्रीय नाटक

01– मध्यम व्यायोग

02– अभिज्ञान शाकुन्तलम्

आधुनिक नाटक

01– खामोश! अदालत जारी है।

02– अन्धायुग

पाश्चात्य नाटक

01– हैमलेट

02– चेरी का बागीचा

(पुरूष)

लोपाखिन : मैंने उसे खरीद लिया। भाइयो और बहनो, हाथ जोड़ता हूँ, एक मिनट आप लोग ठहरें। मेरा सिर चकरा रहा है। मुझसे बोला नहीं जा रहा है (हंस पड़ता है) हम लोग नीलाम में पहुँचे। दैरिगानोव वहाँ पहले से ही डेरा डाले था। लियोनिद एन्द्रिएविच के पास तो कुल 15 हज़ार रूबल थे और दैरिगानोव ने बकाया के अलावा सीधी बोली दी 30 हज़ार की। खैर, मैं इनकी मदद को आगे बढ़ा। मैंने उसके खिलाफ बोली दी। मैं चालीस हजार बोला तो, वह पैंतालीस हजार बोल दिया। मैंने पचपन बोले तो वह भी पाँच हजार बढ़ाकर बोला–मैंने भी दस हजार बढ़ाए...बहरहाल... बात ख़त्म हुई। मैंने गिरवी के ऊपर 90 हजार बोले। बोली मेरे नाम रही। अब चेरी का बगीचा मेरा है–मेरा! (हँसता है) हे भगवान, चेरी के बगीचे का मालिक मै हूँ। अरे, कोई मुझसे कहो कि मै नशे में हूँ, मैं पागल हो गया हूँ–यह सब सपना है? (जमीन पर पाँव पटकता है) मेरी बात पर हँसो मत। काश, मेरे बाप और दादा कब्रों से उठकर आज देखते कि क्या हो गया है। कैसे यार्मोलाय ने, उसी बुद्धू और पिटने वाले यार्मोलाय ने, जो भरे जाड़ों में नंगे पाँव भागा–भागा फिरता था– उसी यार्मोलाय ने, दुनिया के सबसे अच्छे बग़ीचे को खरीद लिया है। आज मैंने उस सारी ज़ायदाद को खरीद लिया है–जहाँ मेरे बाप–दादे गुलाम थे और उन्हें रसोई–घर में घुसने तक की इजाजत नहीं थी। मैं नींद में हूँ...? यह सब सपना है? यह सब कल्पना है? अज्ञान के अन्धकार में डूबी बुद्धि का शेखचिल्लीपना है (आनन्द से मुस्कराते हुए चाबियाँ उठा लेता है) वार्या चाबियाँ फेंक गई है। वह दिखाना चाहती है कि अब वह घर की मालकिन नहीं है! (चाबियाँ बजाता है) ख़ैर, कोई बात नहीं। (राग साधता हुआ आर्केस्ट्रा सुनाई देता है) अरे, बाजे वालो, बजाओ–बजाओ। मैं तुम्हारा गाना सुनना चाहता हूँ। तुम सब लोग आकर देखना, कैसे यार्मोलाय लोपाखिन कुल्हाड़ी लेकर चेरी के बगीचे में जाता है, कैसे पेड़ कट–कटकर धरती पर गिरते हैं। हम यहाँ घर बनाएँगे हमारे पोते–पड़पोते वहाँ एक नई ज़िन्दगी उभरती पाएँगे। बाजे वालो... बजाओ–बजाओ।

(संगीत शुरू हो जाता है। रैनिस्काया कुर्सी पर सिर झुकाए बैठी फूट–फूट कर रो रही है।)

लेखक–एंतोन चेखव

नाटक–चेरी का बगीचा

अनु–राजेन्द्र यादव

(पुरूष)

हेमलेट : रहना है या नहीं रहना हैः यही सवाल है। अच्छा क्या है, ज़ालिम तक़दीर के तीरों की चोट मन ही मन सहना या मुसीबतों के समुन्दर के खिलाफ़ हथियार उठाना और लड़कर उनका खात्मा कर देना ? मर जाना–सो–जाना और बस। काश कि हम एक नींद लेकर कह सकते कि सीने में अब कहीं दर्द नहीं है और न वह हज़ार चोटें ज़िन्दगी की जो इस हाड़–मांस के पुतले को विरासत में मिली हैं, सो कैसी मनचाही परिणति होती यह। मर जाना सो जाना–सो–जाना ! और संयोग से कभी कोई सपना देखना ! जी हाँ, उसी में तो पेंच है! कौन जाने यह चोला छूट जाने पर मौत की उस नींद में कैसे–कैसे सपने आएँ! उन्हीं के डर से तो हम ठिठक जाते हैं। और झेले जाते हैं ज़िन्दगी को, एक लम्बी काली बला की तरह। ऐसा न हो तो जमाने की नफ़रत के कोड़े कौन सहे और कौन सहे ज़ालिम का ज़ुल्म, घमंडी की शेख़ी, नाकाम मुहब्बत की कचोट, क़ानून की ढिलाई, हुक्काम के तेवर और नालाय़कों की ठोकरें, जिनके आगे लियाक़त सर झुकाती है ? क्या ज़रूरत है इस सब की, जब वह ख़ुद एक नंगी छुरी से अपना हिसाब बेबाक कर सकता है ? थकी, बोझिल, पसीने से लथपथ, कराहती हुई ज़िन्दगी की गठरी कौन ढोए अगर मौत के बाद किसी एक गुमनाम–सी चीज़ का डर आदमी के हौसले को चक्कर में न डाल देता हो –– मौत, वह अनजान देश जिसकी सरहद से कभी कोई मुसाफ़िर नहीं लौटता। अपने उसी डर की ख़ातिर तो हम अपनी तकलीफ़ों से भागने के बदले उनको झेलते हैं, इसीलिए न कि हमें कुछ पता नहीं वह दूसरी तकलीफ़ें क्या होंगी ? यही सोच–विचार संकल्प के स्वस्थ रंग पर अपना पीला–पीला सा बीमार रंग चढ़ाकर हम सबको कायर बना देता हैं और बड़े–बड़े काम इन्हीं रेगिस्तानों में पड़कर कुछ इस तरह भटक जाते हैं कि कर्म की संज्ञा भी खो बैठते है ! चुप चुप! सुन्दरी ओफ़ीलिया ? ऐ रूप की देवी, अपनी दुआओं में मेरे गुनाहों की माफ़ी का भी ख़याल रखना।

लेखक–विलियम शेक्यपीयर

नाटक–हेमलेट

मनुष्य : मैं अभी थोड़ी ही देर में मर सकता हूँ। (रूककर) नाटक की मृत्यु नहीं, असली मृत्यु। आप लोगों की आँखों के सामने ही मेरे प्राण–पखेरू उड़ सकते हैं। (रूककर) मुझे एक संयासी ने कहा था, तुम्हें इस मास में कम–से–कम एक दिन पूर्ण जागरण करना चाहिए, तभी ज़िन्दा रहे सकोगे। नही ंतो महिने की आख़िरी रात भर जाओगे। उसके यह कहने पर मैं यह सोचकर हँस पड़ा कि भला यह कौन–सी बड़ी बात है। परन्तु अब तक उनतीस रातें गुज़ार चुका हूँ। एक रात भी पूरी तरह जागरण सम्भव नहीं हो सका। प्रत्येक रात मेरे जाने–अनजाने नींद का झोंका आ ही जाता है। आँखें लग ही जाती हैं जो मैं खुली आँखों से देख रहा हूँ और समझ रहा हूँ, वह तो बाद में पता चलता है कि वह एक सपना ही था। इस प्रकार उनतीस रातें गुज़र गयी है। एक रात भी पूरी तरह जागना सम्भव नहीं हो सका। यह अन्तिम रात हैं यह भी कैसे विश्वास करूँ कि जो बात अब तक सम्भव नहीं हो सकी, वह आज सम्भव हो जाएगी। आप लोगों के देखते–देखते ही मुझे झोंका आ सकता है। अगर कुछ ऐसा हुआ तो समझना चाहिए कि मेरा सर्वनाश हो गया। (रूककर) मैंने उस सन्यासी से पूछा था–''भला मेरा अपराध क्या है ? मेरी किस ग़लती के लिए यह मुसीबत मेरे गले पड़ी है?'' उसने कहा–''तुमने नाटक लिखे हैं, खिलाये हैं। तुम पर विश्वास रखकर तुम्हारे नाटकों को देखेने आयी जनता को ऊबड़–खाबड़ कुर्सी, बेचों पर बैठने से न तो नींद आयी और न पूरा आराम मिला। इस प्रकार उन्हें नरक–यातना भोगनी पड़ी है। वही अनिद्रा शाप के रूप में तुम्हारे पीछे पड़ी है। मृत्यु बनकर तुम्हारी ताक में है।''

(मौन) मुझे यह मालूम नहीं था कि मेरे नाटक इतने परिणामकारी होंगे।

यह अन्तिम रात है। इसीलिए घर छोड़कर भाग आया हूँ। यही सोचकर आया हूँ कि लेखक होने के घमण्ड में जिन्हें मैं आजन्म तंग करता रहा, उनके सामने मरना ठीक नहीं। इस उजाड़ मन्दिर में, जिसका विग्रह भी टुकड़े–टुकड़े हो चुका हैं और जिसका कोई नाम भी नहीं है, सबसे आँखें बचाकर मरने के लिए यह जगह सही हैं मानो इसी के लिए यह जगह बनी हो। एक बात तो सत्य है। अगर इस बार बच गया तो नाटक लिखने का नाम नहीं लूँगा। कहानी, कथानक, प्लाट, थीम, इतिवृत्त कुछ भी छूऊँगा तक नहीं, भगवान की कसम।

(दीर्घ मौन। बार–बार आँखें खोलने और अपने को चिकोटी काटने का प्रयत्नप करता है। मन्दिर के बाहर कई स्त्री स्वर सुनाई पड़ते हैं। उस तरफ़ देखकर।)

कौन है? इस आधी रात में, इस उजड़े मन्दिर में कौन आ रहा है? (आश्चर्य से) चार–पाँच दीये!

(खम्बे की ओट में छिपकर देखता है। चार–पाँच दीये की ज्योतियाँ हवा में तैरती हुई मन्दिर में प्रवेश करती हैं और स्त्री स्वर में बातें करती हैं, हँसती हैं।)

आश्चर्य, परमाश्चर्य...केवल दीये की ज्योतियाँ हैं, बत्ती नहीं, दीये नहीं, दीया पकड़ने वाला नहीं! केवल ज्योतियाँ बिना किसी आधार के हवा में तैरती चली आ रही हैं। बातें भी कर रही हैं यह कैसा करिश्मा? यह भूत–प्रेतों की करामात नहीं? या भूतनियों का चमत्कार है?

(और भी दस–बीस ज्योतियाँ आती हैं। उनमें आपस में गप्पें और हँसी–मज़ाक चलता है।)

नाटक–नागमण्डल

नाटककार का नाम–गिरीश कार्नाड

(पुरूष)

कालिदास : मैने बहुत बार अपने सम्बन्ध में सेचा है मल्लिका, और हर बार इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अम्बिका ठीक कहती थी

(बाँहें पीछे की और फैल जाती हैं और आँखें छत की और उठ जाती हैं।)

मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातारण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा...और यह आशंका निराधार नहीं थी।

(आँखे मल्लिका की और झुक जाती हैं।)

तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन सँभलाने जा रहा हूँ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परन्तु मुझे इसमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। सम्भवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब–तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।

(होंठ काटकर उठ उड़ता है और झरोखे के पास चला जाता है।)

परन्तु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता। मैंने बार–बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि कमी उस वातावरण में नही मुझमें हैं मैं अपने को बदल लूँ, तो सुखी हो सकता हूँ। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका। अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश–भर में पहुँच गयी, परन्तु मैं सुखी नहीं हुआ।किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एक राज्याधिकारी का कार्यक्षेत्र मेरे कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार–बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह में पड़कर उस क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक फैली क्षितिज–रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ। मैं अपने को आश्वासन देता कि आज नही तो कल मैं परिस्थितियों पर वश पा लूँगा। और समान रूप से दोनों क्षेत्रों में अपने को बाँट दूँगा। परन्तु मैं स्वयं ही परिस्थितियों के हाथों बनता और चालित होता रहा। जिस कल की मुझे प्रतीक्षा थीं, वह कल कभी नहीं आया और मैं धीरे–धीरे खण्डित होता गया, होता गया। और एक दिन...एक दिन मैने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ। मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ जिसका उस विशाल के साथ कुछ भी सम्बन्ध था।

(क्षण–भर वह चुप रहता है। फिर टहलने लगता है।)

काश्मीर जाते हुए मैं यहाँ से होकर नहीं जाना चाहता था। मुझे लगता था कि यह प्रदेश, यहाँ की पर्वत–श्रृंखला और उपत्यकाएँ मेरे सामने एक मूक प्रश्न का रूप ले लेंगी। फिर भी लोभ का सवंरण नहीं हुआ। परन्तु उस बार यहाँ आकर मैं सुखी नहीं हुआ। मुझे अपने से वितृष्णा हुई। उनसे भी वितृष्णा हुई जिन्होंने मेरे आने के दिन को उत्सव की तरह माना। तब पहली बार मेरा मने मुक्ति के लिए व्याकुल हुआ था। परन्तु उस समय मुक्त होना सम्भव नहीं था। मैं तब तुसमे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि भय था तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं इससे बचना चाहता था। तुम पर उसकी क्या प्रक्रिया होगी, दूसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी उस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे मन में कोई वैसा भाव नहीं आएगा। और मै यह आशा लिए हुए चला गया कि एक कल ऐसा आएगा। जब मैं तुमसे यह सब कह सकूँगा और तुम्हें अपने मन के द्वन्द्व का विश्वास दिला सकूँगा।...यह नहीं सोचा कि द्वन्द्व एक ही व्यक्ति तक सीमित नहीं होता, परिवर्तन एक ही दिशा को व्याप्त नहीं करता। इसलिए आज यहाँ आकर बहुत व्यर्थता बोध हो रहा है।

(फिर झरोखे के पास चला जाता है।)

लोग सोचते हैं मैने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुंत कुछ लिखा हैं। परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का ही संचय था। 'कुमारसम्भव' की पृष्ठभूमि यह हिमलायृ है और तपस्विनी उमा तुम हों। 'मेघदूत' के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह–विमर्दिता यक्षिणी तुम हो–यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की।'अभिज्ञान शाकुन्तल' में शकुन्तला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब–जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर–फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान् नहीं हुई। 'रघुवंश' में अज का विलाप मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति है और...।

(मल्लिका दोनों हाथों में मँह छिपा लेती है।

कालिदास सहसा बोलते–बोलते रूक जाता है

और क्षण–भर उसकी ओर देखता रहता है।)

चाहता था, तुम यह सब पढ़ पातीं, परन्तु सूत्र कुछ इस रूप में टूटा था कि...।

(मल्लिका मुँह से हाथ हटाकर नकारात्मक भाव से सिर हिलाती है।)

नाटक का नाम–आषाढ़ का एक दिन

नाटकाकार का नाम–मोहन राकेश

(महिला)

रैनिस्काया : हाय, मेरे गुनाहों का क्या पूछना? मैंने हमेशा बिना आगे–पीछे सोचे, पागलों की तरह पैसा बहाया है। पहले तो ऐसे आदमी से शादी कर बैठी, जिसे कर्ज़ करने के सिवा कोई और काम ही नहीं था। इतनी बुरी तरह उसने शराब पी कि शैम्पेन पीते–पीते ही उसके प्राण निकल गए। फिर मेरी कम्बख्ती यह कि दूसरे आदमी को प्यार किया–और फौरन ही मुझे पहला दंड भी मिला–मेरे ऊपर वज्र टूट पड़ा...। यहीं, इसी नदी में... मेरा बेटा डूब मरा! फिर मैं विदेश चली गई ताकि यहाँ कभी न लौटूँ... इस नदी को कभी न देखूँ...हमेशा बाहर ही घूमती रहूँ... मैं आँखें बन्द करके भाग खड़ी हुई... दिग्भ्रमित की तरह। लेकिन वह मेरा दूसरा खसम क्रूरता और निर्दयता से मेरी जान को ही लगा रहा–मैन्तॉन में जाकर मैंने एक बँगला खरीदा क्योंकि यह साहब वहाँ जाकर बीमार हो गए। तीन साल, रात और दिन एक पल का आराम नहीं मिला। उस बीमारी और बीमार दोनों ने मुझे चूर–चूर कर डाला। आत्मा का जैसे सारा रस निचुड़ गया। आखिरी साल जब कर्ज़े के लिए मेरा बँगला बिक गया तो मैं पेरिस चली आई। यहाँ इन साहब ने दूसरी औरत के लिए मेरा सारा मालमत्ता छीनकर मुझे धक्का दे दिया। तब मैंने ज़हर खाकर मरने की ठान ली।... हाय, कैसी शर्मनाक ! ....फिर अचानक मेरे दिल में रूस के लिए, अपने देश के लिए, अपनी छोटी बच्ची के लिए, हुक–सी उठने लगी... (अपने आँसू पोंछती है) हे भगवान्, हे प्रभु, मेरे पापों को क्षमा कर, मेरे ऊपर दया कर! अब मुझे और दंड मत दे! (अपनी जेब से तार का कागज निकालती है) पेरिस से मुझे आज ही यह तार मिला है! वह मुझसे क्षमा माँगते हैं, लौट आने की खुशामद करते हैं। (तार को फाड़ देती है) लगता है कहीं संगीत हो रहा। (सुनती है).

लेखक–एंतोन चेखव

नाटक–चेरी का बगीचा

अनु–राजेन्द्र यादव

(महिला)

बेणारे : हाँ! बहुत कुछ कहना है मुझे। (अँगड़ाई लेकर) कितने बरस बीत गए, कुछ कहा ही नहीं। क्षण आए, चले गए। एक के बाद एक तूफान आए, मगर कंठ में ही घुटकर रह गए। छाती में प्राणान्तक आक्रोश उठे, किन्तु इस बार होंठों को कसकर भींच लिया। लगा कि कोई भी इसे जान नहीं सकेगा, कोई भी समझ नहीं सकेगा इसे। जिस समय शब्दों का प्रचंड ज्वार उमड़ता हुआ आकर होंठों से टकराने लगता है तो लगता है वह मेरे आसपास रहने वाले आदमी कितने नामसझ, पागल और बचकाने हैं। सभी! वह भी, जो नितान्त अपना है। दिल करता है उन पर भी जी भर हँसती रहूँ। बस, हँसती ही रहूँ। और तब मन फूट–फूटकर रो उठता है और इतना रोता कि आँतें ऐंठने लगती हैं। लगता कि हृदय फट जाए तो अच्छा हो। जिन्दगी कितनी सारहीन लगती। (एक गहरा निःश्वास भरके) मगर प्राण नहीं जाते और न जाने पर फिर उसके महत्व का अहसास होता है। आने वाला हर क्षण फिर कितना नया और अनोखा लगता है। आकाश, पक्षी, बादल, किसी सूखे तरु की धीरे से झाँकती हुई कोई टहनी और खिड़की में हिलता हुआ परदा। चारों ओर फैली हुई नीरवता और कहीं दूर से आती हुई अस्पष्ट आवाजें, हॉस्पिटल की दवाओं की भभक यह सब भी तब जिन्दगी की रस से परिपूर्ण लगती हैं। लगता है जिन्दगी चौकड़ी भरती हुई मेरे लिए गीत गा रही है। कितना ज्यादा था आत्महत्या की असफलता का आनन्द। जीवित रहने की वेदना से भी ज्यादा... (गहरी साँस भरकर) जिन्दगी को व्यर्थ जानकर फेंकने लगोगे, तभी उसके अस्तित्व का एहसास होगा, मजा है न? सँजोकर रखो तो फेंक देने की इच्छा हो और फेंक दो तो उसके बच जाने का सुख मिले, कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। बार–बार वही, उसी तरह (शिक्षिका की तरह) जीवन ऐसा है, जीवन वैसा है, जीवन अमुक है, जीवन तमुक है–जीवन चिन्दी–चिन्दी होकर बिखरता हुआ एक ग्रन्थ है, जीवन यानी विश्वासघात है, जीवन यानी प्रतारणा है, जीवन यानी नशा है, जीवन यानी आवारागर्दी है। जीवन, यानी ऐसा कुछ है जो कुछ नहीं है या ऐसा कुछ भी नहीं है जो सचमुच कुछ हो। (सहसा कोर्ट के अनुरूप पोज लेकर) मी लॉर्ड! जीवन एक भयंकर हस्ती है। जीवन को फाँसी पर लटका देना चाहिए। 'जीवन जीवन मर्हति' जीवन की पड़ताल करके उसे नौकरी से निकाल देना चाहिए। लेकिन क्यों? क्यों आखिर ? अपने काम में मैंने कभी कोई कोर–कसर की? प्राण देकर अपने बच्चों को बनाया है मैंने। शिक्षा दी है। जानती थी मैं, यह जिन्दगी आसान नहीं है। आदमी बहुत क्रूर हो सकता है। अपने सगे–सम्बन्धी भी जानने–समझने की तवालत नहीं उठाएँगे। इस जीवन का बस एक ही सत्य है–शरीर। आप इससे इन्कार करें तो करें, करते रहें। मगर यही सत्य सर्वमान्य है। भावना तो बस आवाज में कम्पन पैदा करके मीठी–मीठी बातें करने की अदा है। मैं देख रही थी सब कुछ! उसी में जी रही थी और भीतर ही भीतर झुलस रही थी। मगर क्या इस बात को कोई जानता है कि उन नन्ही–नन्ही कोंपलों को मैंने अपने उस झुलसन की आँच भी नहीं लगने दी। इस विष को अकेले पचाया है मैंने।

वह जानते भी नहीं। उन्हें तो मैंने सौन्दर्य की शिक्षा दी है। मन में उमड़ती हुई हिचकियों को दबाकर उन्हें बेतहाशा हँसाया है मैंने। मन की निराशा को छुपाकर आशावादी बनाया है उन्हें। कौन सा वह गुनाह है जिसके आधार पर तुम मेरी नौकरी मेरी इकलौती खुशी छीन रहे हो मुझसे ? मेरा निजी चरित्र मेरी अपनी समस्या है। अपने इस गुनाह का दंड क्या भोगना होगा, इसे मैं निश्चित करूँगी जैसे हर व्यक्ति को करना चाहिए। इस पर उँगली उठाने का अधिकार किसी दूसरे को नहीं मिल सकता। हर किसी का अपना अलग व्यक्तित्व मार्ग और फिर अन्त होता है। मगर वह सार्वजनिक कैसे हो सकता है? (एकाएक स्कूल के हल्के–फुल्के मूड में) शश ऽऽऽ आवाज बन्द । साइलेन्स। कितना शोर ? (कठघरे से निकलकर सब तरफ घूमने लगती है, जैसे क्लास रूम में चल रही हो।) एकदम चुपचाप बैठे रहो सब। (निश्चेष्ट बैठे हुए एक–एक व्यक्ति को बारी–बारी से देखकर) बेचारे बच्चो! जानते हो यह सब कौन हैं? ("एक–एक चेहरे पर प्रकाश केन्द्रित होता है। सबके चेहरे भयानक, जड़वत् प्रेत जैसे दिखाई देते है) यह बीसवीं शताब्दी के सुसंस्कृत मानव के अवशेष हैं। देखो ये चेहरे कितने जंगली लग रहे हैं। होंठों पर घिसे–पिटे खूबसूरत औपचारिक शब्द हैं, भीतर अतृप्त और विकृत वासनाएँ। (स्कूल का पीरियड खत्म होने का घंटा। बच्चों का अस्पष्ट–सा शोर। उसे सुनती–सुनती वह क्षण भर के लिए तल्लीन हो जाती है। आवाजें दूर होती अन्ततः डूब जाती हैं। एक चुप्पी। वह जैसे सोते से जागती है। अपने चारों तरफ देखती है और उस चुप्पी से बहुत भयभीत हो जाती है।) नहीं–नहीं, मुझे ऐसे अकेली छोड़कर न जाओ रे, बच्चो। मुझे इनसे भय लगता है–बहुत भय लगता है। (भय से मुँह छुपाकर व्याकुल स्वर में) कबूल करती हूँ, मैंने पाप किया है। मैंने माँ के भाई से प्रेम किया है। मगर घर के बन्धनों के बीच... मेरी खिलती–गदराती हुई देह की बहार में अकेला वही तो मेरे करीब आया था उसी ने तो उस बहार का दिन–रात बखान किया था...लाड़ किया, दुलराया... मुझे क्या पता कि हृदय से जिसके साथ एकरूप होने की तीव्र इच्छा होती हो... जिसके केवल संसर्ग से सम्पूर्ण जीवन सार्थक–सा लगता हो वह अगर माँ का भाई है तो सब कुछ पाप में बदल जाएगा। अरे कुल चौदह साल की तो थी में। पाप क्या होता है यह जानती भी नहीं थी मैं–माँ की सौगन्ध। (छोटी बच्ची की तरह बिलखकर रोती हुई) मैंने विवाह के लिए जिद की थी तो सिर्फ इसलिए कि औरों की तरह एक सुखी गृहस्थी की कल्पना मेरे मन में भी थी। मगर सबके साथ मेरी माँ ने भी उसका विरोध ही किया। मेरा पुरुष दुम दबाकर भाग गया। इतना क्रोध आया उस पर कि जी चाहा सरे बाजार खड़ा करके उसका मुँह तोड़ दूँ। थूक दूँ उसके मुँह पर! पर उस समय में बहुत छोटी थी, कमजोर थी, अनजान थी। अपने को मृत्यु के हवाले करने के लिए घर के छज्जे पर से कूद पडी। मगर मर नहीं सकी, सोचा, तन से नहीं मर सकी तो मन से तो मर ही गई हूँ। मगर मैं मन से भी नहीं मर सकी थी। मैंने फिर से प्रेम किया था। सोच–समझकर किया। प्रौढ़ उम्र में किया सोचा था कि यह प्रेम कुछ और तरह का है। यह प्रेम नहीं श्रद्धा है। यह एक अनूठी बौद्धिकता के प्रति आकर्षण है। यह प्रेम हो ही नहीं सकता, यह तो भक्ति है। मगर फिर मैंने भूल की। मन द्वारा की गई उस भक्ति में तन का नैवेद्य चढ़

गया। और नैवेद्य पाते ही मेरी बुद्धि का देवता मुकर गया। उसे मेरी भक्ति की, मेरी श्रद्धा की दरकार कहाँ थी? बिल्कुल ही नहीं थी। (हल्के स्वर में) वह देवता था ही नहीं। वह मनुष्य था। बस। फिर वही शरीर! (चीखकर) यह शरीर ही सारा अनर्थ करता है। (वेदना से व्याकुल होकर) इस शरीर से घृणा है मुझे। और बहुत–बहुत प्यार भी है। इस पर क्रोध आता है, मगर इसके अस्तित्व को नकार नहीं सकती मैं। तो फिर? वह तो रहेगा ही और तेरा होकर ही रहेगा। इसे छोड़कर तू जाएगी कहाँ? और यह भी तुझे छोड़कर कहाँ जाएगा। कृतघ्न मत बन। यही है वह शरीर जिसने तपकर तुझको एक अतिशय सुखदायी स्वर्गिक तृप्त क्षण दिया था। भूल गई? यही है वह जिसने तुझे शरीर से परे–बहुत ऊँचे दिव्यलोक में उस क्षण पहुँचा दिया था। इन्कार करेगी? बोल। और अब उसी में तो पनप रहा है उस क्षण का साक्षी एक नन्हा कोमल अंकुर... हाँ। मेरे बच्चे का है वह बीज मेरे प्राण का! जो कल हँसता–खिलखिलाता, नाचता थिरकता एक जीव होगा। यह शरीर मुझे चाहिए उसके लिए यह शरीर मुझे चाहिए। सचमुच चाहिए। (आँखें बन्द हो जाती हैं। उसी आवेग में कुछ बुदबुदाती रहती है।) उसे माँ चाहिए–पिता का हकदार है वह। उसे घर चाहिए... संरक्षण चाहिए... प्रतिष्ठा चाहिए...।

लेखक–खामोश!अदालत जारी है

नाटक–विजय तेन्दुलकर

अनु–सरोजिनी वर्मा

मल्लिका : नहीं, तुम काशी नहीं गये। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। मैनें इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन–भार सँभालों। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं–यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभकामनाएँ ग्रहण नहीं की।

ग्रन्थ को हाथों में लिये जैसे अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।

मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है।

ग्रन्थ को घुटनों पर रख लेती है।

और आज तुम मेरे जीवन को इस तरह निरर्थक कर दोगे ?

ग्रन्थ को आसन पर रखकर दद्विग्न दृष्टि से उसकी ओर देखती रहती है।

तुम जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती। क्या जीवन को तुम मेरी दृष्टि से देख सकते हो ? जानते हो मेरे जीवन के ये वर्ष कैसे व्यतीत हुए हैं? मैंने क्या–क्या देखा है? क्या से क्या हुई हूँ?

उठकर अन्दर का किवाड़ खोल देती है और पालने की ओर संकेत करती हैं।

इस जीवन को देखते हो? पहचान सकते हो? यह मल्लिका है जो धीरे–धीरे बड़ी हो रही है और माँ के स्थान पर अब मैं उसकी देख–भाल करती हूँ।...यह मेरे अभाव की सन्तान है। जो भाव तुम थे, वह दूसरा नहीं हो सका, परन्तु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी–कितनी आकृतियाँ हैं। जानते हो मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और अब मैं अपनी दृष्टि में नाम नहीं, केवल विशेषण हूँ।

किवाड़ बन्द करके आसन की ओर लौट पड़ती है

व्यवसायी कहते थे, उज्जयिनी में अपवाद है, तुम्हारा बहुत–सा समय वारांगणओं के सहवास में व्यतीत होता है।....परन्तु तुमने वारांगणा का यह रूप भी देखा है? आज तुम मुझे पहचान सकते हो? मैं आज भी उसी तरह पर्वत–शिखर पर जाकर मेघ–मालाओं को देखती हूँ। उसी तरह 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूत' की पंक्तियाँ पढ़ती हूँ। मैने अपने भाव के कोष्ठ को रिक्त नहीं होने दिया। परन्तु मेरे अभाव की पीड़ा का अनुमान लगा सकते हों?

कहनियाँ आसन पर रखकर बैठ जाती है।

और ग्रन्थ हाथों में उठा लेती है।

वहीं, तुम अनुमान नहीं लगा सकते। तुमने लिखा था कि एक कदोष गुणों के समूह में उसी तरह छिप जाता है, जैसे चाँद की किरणों में कलंक, परन्तु दारिद्रय नहीं छिपता। सौ–सौ गुणें में भी नहीं छिपता। नहीं, छिपता ही नहीं, सौ–सौ गुणों को छा लेता है–एक–एक करके नष्ट कर देता है।

बोलती–बोलती और अन्तर्मुख हो जाती है।

परन्तु मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बने रहे हो। क्योंकि मै। अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर सन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस तरह वंचित कर दोगे?

बिजली कौंधती है और मेघ–गर्जन सुनायी देता है।

वही आषाढ़ का दिन हैं। उसी तरह मेघ गरज रहे है। वैसे ही वर्षा हो रही है। वही मैं हूँ। उसी घर में हूँ। किन्तु....!

नाटक का नाम–आषाढ़ का एक दिन

नाटककार का नाम–मोहन राकेश

(महिला)

लेडी मैकबेथ : ''जिस दिन मुझे विजय प्राप्त हुई थी उसी दिन वे मुझे मिली थीं और यह मुझे पूरी तरह पता लग गया था कि पृथ्वी पर रहने वाले प्राणियों से कही अधिक वे जानती हैं। मैं कुछ और आगे पूछने के लिए उत्सुक हुआ उसी समय वे जाने कहां हवा में विलीन हो गई। इससे मैं आश्चर्य में डूबा हुआ वहीं खड़ा रहा गया, उसी बीच सम्राट के भेजे दूत वहां आए और उन सबने मुझे 'काउडोर का थेन' पुकार मेरा अभिनन्दन किया। ठीक उसी पद से, जिससे उन डायन बहिनों ने पहले मेरा स्वागत किया था। फिर यह कहकर कि 'सम्राट बनेगा, उसका स्वागत है' उन्होने भविष्यवाणी की थी।

ओ मेरे सुख और ऐश्वर्य की सर्वप्रिय सहभागिनी! मैंने सबसे पहले यह अच्छा समझ कि तुम्हें इस बात से अवगत करा दूँ, जिससे तुम मेरे आनेवाले ऐश्वर्य और गौरव से अपरिचित न रह जाओ और मेरे साथ अपनी प्रसन्नता का उचित भाग पा सको। इस बात को अपने ह्रदय में रखना। अच्छा, अलविदा!''

(स्वगत) ग्लेमिस तो तुम पहली ही हो और अब काउडोर का थेन बनाकर तुम्हारा सम्मान किया गया है। इसके अलावा आगे की भी भविष्यवाणी अवश्य पूरी होगी। पर फिर भी मुझे एक बात का डर है कि तुम्हारा स्वभाव इतना सरल और उदार है कि यह तुम्हें अपने गौरवशाली भाग्य के निकट शीघ्रता से पहुंचने नहीं देगा। तुम महान होना चाहते हो। महत्वाकांक्षा तुम्हारी रग–रग में समाई हुई है, पर बिना किसी तरह का पाप किए उसे प्राप्त करना चाहते हो। जिसके पाने के लिए तुम इतने लालायित हो उसे अन्त तक पवित्र रहकर ही प्राप्त करना चाहते हो। किसी तरह का झूठ भी नहीं बालेना चाहते न ? और आनन्द भोगना चाहते हो उस वस्तु का, जो धोखे और बेईमानी से प्राप्त हो सकती हैं ओ ग्लेमिस! तुम जिस ऐश्वर्य और गौरव के लिए लालायित हो वही तुमसे पुकार–पुकारकर कह रहे है कि–'यदि तुम हमें प्राप्त करना चाहते हो तो धृष्टता को तुम्हें गले लगाना ही पड़ेगा।' और कैसा आश्चर्य है कि तुम इसे न करने के लिए अधिक इच्छुक हो, क्योंकि ऐसा करते हुए डर से तुम्हारा हृदय कांपता है न ? शीघ्र यहां चले आओ, जिससे मेरे ह्रदय में जितना भी साहस है वह सब तुम्हारे कानों में होकर ह्रदय में भर दूं और अपनी वीरता–भरी वाणी से उस रोड़े को हटाकर नष्ट कर दूं ओ तुम्हारे और राजमुकुट के बीच अड़ा हुआ है, जिससे अपने भाग्य और दैवी शक्तियों के द्वारा तुम पहले ही विभूषित किए आ चुके हो।

नाटक का नाम–मैकबेथ

नाटककार का नाम–विलियम शेक्यपीयर

(कविता महिला और पुरूष दोनो के लिए)

जो बीत गयी

जो बीत गयी सो बात गयी।

जीवन में एक सितारा था,

माना, वह बेहद प्यारा था,

वह डूब गया तो डूब गया,

अम्बर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे

कितने इसके प्यारे छूटे,

जो छूट गये फिर कहाँ मिले,

पर बोलो टूटे तारों पर

कब अम्बर शोक मानता है।

जो बीत गयी बात गयी।

जीवन में वह था एक कुसुम,

थे उस पर नित्य निछावर तुम

वह सूख गया तो सूखा गया,

मधुवन की छाती को देखो,

सूखीं कितनी इसकी कलियाँ

मुर्झायी कितनी वल्लरियाँ,

जो मुर्झायी फिर कहाँ खिली,

पर बोलो सूखे फूलों पर

कब मधुवन शोर मचाता है।

जो बीत गयी सो बात गयी।

जीवन में मधु का प्याला था,

ने तन–मन दे डाला था,

वह टूट गया तो टूट गया,

मदिरालय का आँगन देखो,

कितने प्याले हिल जाते है,

गिर मिट्‌टी में मिल जाते है,

जो गिरते है कब उठते है,

पर बोलो टूटे प्यालों पर

कब मदिरालय पछताता है।

जो बीत गयी सो बात गयी।

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,

मधुघट फूटा ही करते है,

लघु जीवन लेकर आये है,

प्याले टूटा ही करते है,

फिर भी मदिरालय के अन्दर

मधु के घट है, मधुप्याले है,

जो मादकता के मारे है,

वे मधु लूटा ही करते है,

वह कच्चा पीनेवाला है

जिसकी ममता घट–प्यालों पर

जो सच्चे मधु से जला हुआ

कब रोता है, चिल्लाता है।

जो बीत गयी सो बात गयी।

लेखक का नाम– हरिवंशराय बच्चन
कविता का नाम– जो बीत गयी

<u>(कविता महिला और पुरूष दोनो के लिए)</u>

यह सुगन्ध मेरी है

नदी के किनारे

पुकार एक

मैंने सुनी

कल शाम

यों उस पुकार में

किसी के लिए

सम्बोधन नहीं था

फिर भी

मुझे जान पड़ा

जाने क्यों

यह पुकार मेरी है

तो भी मैं बोली नहीं।

सूने राजमार्ग पर

परस मिला मुझे

ज़रा गरमीला

आधी रात

यों उस परस में

किसी के लिए

अनुरोध नहीं था

फिर भी

मुझे जान पड़ा

जाने क्यों

यह परस मेरा है

तो भी मैं चौंका नहीं।

बौरे आम के तले सुगन्ध मिली

मुझे आज

प्रातः काल यों उस सुगन्ध में

किसी के लिए

आमन्त्रण नहीं था

फिर भी

मुझे जान पड़ा

जाने क्यों

यह सुगन्ध मेरी है

तो भी मैं खिला नहीं।

कविता का नाम–यह सुगन्ध मेरी हैं

कविताकार का नाम–त्रिलोचन

(कविता महिला और पुरूष दोनो के लिए)

शपथ

आज हँसे हम।

जमी बर्फ ओठों से पिघली,

फाँसी का फंदा भी छूटा,

गला खुला अब।

ढाई सौ वर्षो के बाद,

हाथ–पाँव की कड़ियाँ तड़की,

छाती से सब कीलें उखड़ी,

सूखा लोहू नस–नस दौड़ा,

ह्रदय जिया अब।

ढाई सौ वर्षो के बाद,

भाई ने भाई को भेंटा,

माँओं ने पुत्रों को चूमा,

उर–उरोज से पति–पत्नी का,

मिलन हुआ अब।

ढाई सौ वर्षो के बाद,

किंतु, झोपड़ी वही खड़ी है,

नयी ईट तक नहीं लगी है,

बड़ी गरीबी भरी पड़ी है,

वही धुआँ है,

वही क्षुधा है,

वही कर्ज है,

वही सूद है,

वहीं जमींदारों का छल है,

मानव से मानव शोषित है।

अतः आज हम हँसते–हँसते,

नयी शपथ यह प्रथम करेंगे,

शोषक का साम्राज्य हरेंगे,

जनवादी सरकार करेंगे,

निधड़क हम निर्माण करेंगे,

रात और दिन काम करेंगे,

पाँच साल में पूरा भारत,

स्वर्ग करेंगे–स्वर्ग करेंगे।

आज हँसे हम, सदा हँसेगे।।

कविता का नाम– शपथ

कविताकार का नाम–केदारनाथ अग्रवाल

(कविता महिला और पुरूष दोनो के लिए)

कोई नहीं आयेगा

कोई नहीं आयेगा।

जाती लहरों के साथ–साथ

मेरी आत्मा का संगीत घिसटता जायेगा।

नौका उलट जाने पर भी

डूबने से बचा लाया था मैं

वह साज़

वह स्वरलिपियाँ,

जिन पर

पेट से निकला पानी

और ठण्डा, ज़र्द, थका चेहरा लिये

मेरा एकान्त सो जायेगा।

अँधेरे को सूँघकर मैंने देखा है

उसमें सूरज की गन्ध आती है,

पर मेरा ईश्वर

मेरी ही आँखों से निकलकर

पता नहीं कहाँ–कहाँ ठोकर खायेगा।

प्रतीक्षा और मृत्यु–

दोनों के बीच ख़ामोश होड़ है

कौन किसी आहट पहले सुन पायेगा।

कविता का नाम– कोई नही आयेगा
कविताकार का नाम–सर्वेश्वर दयाल सक्सेना